Aarhat Multidisciplinary International Education Research Journal (AMIERJ)

(UGC Approved Journal No 48178, 48818)

ISSN 2278-5655

राजतरंगिणी का ऐतिहासिक मूल्यांकन

डॉ.जमील अहमद

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्राचीन भारतीयों की इतिहास–विषयक तटस्थता अथवा उदासीनता के बहुप्रचारित 'मिथक' के भ्रमपूर्ण कुहासे में भी प्राचीन कश्मीर के इतिहास से संबन्धित कल्हण कृत राजतरंगिणी की ऐतिहासिक महत्ता सर्वमान्य है। बाशम के अनुसार यह प्राचीन भारत की एकमात्र ऐतिहासिक कृति है जिसे विश्व के किसी भी स्तरीय ऐतिहासिक ग्रन्थ के समकक्ष रखा जा सकता है।[1]

राजतरंगिणी के इस ऐतिहासिक स्वरूप की महत्ता का प्रमुख आधार इस ग्रंथ के प्रणयन में इसके लेखक द्वारा अपनायी गयी वह 'राग–द्वेष–बहिष्कृत' पद्धति है जो ऐतिहासिक सत्य के यथार्थिक उद्घाटन के लिए अपरिहार्य है और जिसे इतिहास की आधुनिक अवधारणा में 'वस्तुनिष्ठता' की संज्ञा से सर्वस्वीकृत वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति का भारतीय पूर्व रूप कहा जा सकता है। साथ ही पूर्वकालीन स्रोतों का समीक्षात्मक अध्ययन देश–काल संबन्धी तथ्यपरक निश्चयता, वक्तव्यों तथा मंतव्यों की स्पष्टता, भौगोलिक तथ्यों की अनुपेक्षा, पात्रों तथा चरित्रों से संबंधित वर्णनों में स्वाभाविकता तथा निष्पक्षता आदि तत्व राजतरंगिणी को ऐतिहासिक ग्रंथ की निर्विवाद मान्यता दिलाने में अपनी–अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं[2] और ये सभी तत्व इतिहास की आधुनिक अवधारणा के अनुरूप ऐतिहासिकता निर्धारण के लिए अनिवार्य एवं अपरिहार्य माने जाते हैं। इसी के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि वस्तुनिष्ठता से संवलित इतिहास की आधुनिक अवधारणा वस्तुतः प्राचीन यूनानी चिंतन में जांच–पड़ताल, और अनुसंधान के मूलभावों के समन्वय द्वारा विकसित 'हिस्ट्री' की उस अवधारणा का ही सातत्य है जिसके अंतर्गत ऐतिहासिक ज्ञान को साक्ष्याधारित एवं तथ्यानुरूप बनाकर उसमें अंतर्निहित निश्चयता, स्पष्टता, तथा प्रदर्शनीयता के आधार पर उसका आभासी शान से (Doxa) विभेद स्थापित करते हुए उसे वास्तविक ज्ञान (Epistemi) में रूपांतरित कर दिया गया था।[3] प्राचीन यूनानियों द्वारा अवधारित (Epistemi) से प्रारंभ कर आधुनिक 'न कम न अधिक

विज्ञान' तक की यात्रा में देश–काल–व्यवहार से संबन्धित कतिपय महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद 'हिस्ट्री' की अवधारणा में 'जांच–पड़ताल', गवेषणा और अनुसंधान की मूल चेतना का नैरंतर्य बना ही रहा और इसलिए साक्ष्यपरकता और तथ्यपरकता उसकी प्रकृति के अभिन्न अंग बने रहे। किन्तु भारतीय संदर्भ में देखने पर 'हिस्ट्री' की यह अवधारणा कथित रूप से अपने भारतीय प्रतिरूप इतिहास की अवधारणा से मेल नहीं खातीं, यद्यपि दोनों में 'अतीतपरकता' की केन्द्रीय प्रधानता होने के कारण सामान्यतः वे दोनों एक दूसरे के पर्याय रूप में समझे जाते रहे हैं। वस्तुतः 'हिस्ट्री' तथा 'इतिहास' दो सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ हैं जिनकी अलग–अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होने के कारण अलग–अलग अर्थ बोध हैं और वे अपने–अपने संस्कृतिगत मूल्यों के साथ सन्दर्भित होकर अपनी–अपनी निजी अर्थवत्ता का निर्वहन करते है।[4] हिस्ट्री की तथ्य प्रधान–साक्ष्यप्रधान प्रकृति के विपरीत इतिहास की प्रकृति 'ऐतिह्य प्रधान' है जिसमें पारंपरिकता का तत्व अधिक प्रभावी होता है। प्राचीन भारतीयों में इतिहास चेतना का 'आरोपित' अभाव वास्तव में इतिहास को हिस्ट्री से आच्छादित करके देखने का परिणाम है और इसलिए इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।[5] हिस्ट्री और इतिहास की अवधारणाओं का यह अंतर क्या राजतरंगिणी के ऐतिहासिक मूल्यांकन का कोई नया आयाम प्रस्तुत करता है क्योंकि हम जानते हैं कि राजतरंगिणी की भारत के एकमात्र ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठा हिस्ट्री के मानकों पर आधारित है? क्या इतिहास की अवधारणा के अनुरूप और भारतीय इतिहासपरम्परा के अंतर्गत राजतरंगिणी के ऐतिहासिक रूप का मूल्यांकन किया जा सकता है, प्रस्तुत लेख इसी बिन्दु को समझने के प्रति उद्दिष्ट है।

आठ तरंगों में विभाजित राजतरंगिणी[6] में कश्मीर की पौराणिक उत्पति से प्रारंभ कर कल्हण के अपने समय तक का इतिहास प्रस्तुत किया गया है जिसके प्रणयन में आधारभूत स्रोत–सामग्री के रूप में आलोचनात्मक दृष्टि से नीलमतपुराण के अतिरिक्त सुव्रत, क्षेमेन्द्र, पद्मिहिर तथा छविल्लकार आदि की कश्मीर के इतिहास से संबन्धित कृतियों समेत ग्यारह पूर्वकालीन ग्रंथों का उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त राजकीय आज्ञापत्रों, दानपत्रों, अभिलेखों, मुद्राओं, प्रशस्तियों के साथ ही साथ अन्य पारम्परिक स्रोतों का भी कल्हण ने समीक्षात्मक उपयोग किया है।[7] राजतरंगिणी का रचनाकाल अंतः स्रोतों पर लौकिक वर्ष 4224–25 अर्थात् 1148–49 ई. ज्ञात होता है।[8] कथानक की दृष्टि से प्रथम तीन तरंगों में कश्मीर के बावन पौराणिक शासकों के शासनकाल का वर्णन किया गया है जिनकी

ऐतिहासिकता संदिग्ध है। अगली दो तरंगों में कार्कोट तथा उत्पल वंशी राजाओं की उपलब्धियों का वर्णन और यहीं से राजतरंगिणी का कथानक अपना ऐतिहासिक कलेवर ग्रहण करता हुआ दिखाई देता है। अंतिम तीन तरंगों में लोहार वंश का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। जिसकी प्रामाणिकता का परीक्षण अन्य स्रोतों से प्राप्त विवरणों के आधार पर किया जा सकता है।[9] कल्हण के व्यक्तित्व से संबंधित कतिपय सूचनायें राजतरंगिणी से प्राप्त होती हैं जिनमें उन्हें भार्गव कुल के सारस्वत ब्राह्मण के रूप में बताया गया है। उनके पिता चम्पक का राजमंत्री के रूप में वर्णन तथा कल्हण की बहुमुखी प्रतिभा का निर्देशन राजतरंगिणी में प्राप्त होता है। कल्हण के बाद क्रमशः जोनराज, श्रीवर तथा संयुक्त रूप से प्राज्यभट्ट एवं शुक द्वारा कम से कम तीन राजतरंगणियों के प्रणयन की जानकारी हमें होती है। जिनमें कश्मीर का परवर्ती इतिहास वर्णित किया गया है।[10]

प्राचीन भारतीय इतिहास–परंपरा में राजतरंगिणी के ऐतिहासिक मूल्यांकन के प्रयास से पूर्व प्राचीन भारत के इतिहास की अवधारणा और इतिहास–परंपरा के स्वरूप पर दृष्टिपात करना उचित होगा। 'इतिह' अथवा 'ऐतिह्य'[11] की मूल चेतना से विकसित इतिहास की भारतीय अवधारणा में 'ऐतिह्य पारंपर्योपदे''ा' तथा 'ऐतिह्य स्मृर्तिप्रत्यक्ष' के अनुरूप (मूल्यपरक) परंपराओं के उपदेशन द्वारा स्मृति के प्रत्यक्षीकरण का मूल भाव था जिसका अभिप्राय अतीतकालीन जीवन मूल्यों की परंपरा को आने वाली पीढ़ी तक संप्रेषित करना समझा जा सकता है।[12] इस ऐतिह्य प्रधान इतिहास की अवधारणा में इस प्रकार, दो तत्वों का समन्वय दिखायी पड़ता है। स्मृति का प्रत्यक्षीकरण, अर्थात कार के शब्दों में अतीत और वर्तमान के बीच अनवरत संवाद[13] (क्योंकि स्मृति का संबंध अतीत से है और प्रत्यक्षीकरण वर्तमान में ही संभव हो सकता है) तथा परंपराओं का उपदेश अर्थात् भावी पीढ़ी तक जीवन मूल्यों का संप्रेषण।[14] इन तत्वों की व्याख्या से इतिहास की भारतीय अवधारणा जिस रूप में हमारे सामने आती है, उसमें 'तथ्य' पर मूल्य की वरीयता स्पष्ट तौर पर स्थापित होती हुई देती है।[15] और इसी स्तर पर 'हिस्ट्री से अपना पार्थक्य घोषित करना प्रतीत होता है। इस मूल बिन्दु से विकसित इतिहास की मूल्यपरक अवधारणा अपनी व्याप्ति में पुरुषार्थ व्चतुष्टय के चारों मूल्यों–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश से समन्वित कथाओं तथा पूर्व वृत्तों'[16] को समाविष्ट कर देश–काल सम्बंधी तथ्यों को एकमात्र ऐतिहासिक मान लेने से उस मूल भाव को निराश

करती है, जो हिस्ट्री की अवधारणा में सर्वथा अपरिहार्य है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हिस्ट्री में मूल्य का कोई स्थान नहीं है या इतिहास में तथ्य सर्वथा अपेक्षणीय है बल्कि हमारा उद्देश्य हिस्ट्री और इतिहास की अवधारणाओं के बीच उस सूक्ष्म अंतर को उभारना है जो दोनों को अलग–अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और वैचारिक परिवेश के कारण उनके अलग–अलग रूप में विकसित होने का मूल कारण बनता है और जिसे समझे जाने बिना इन अवधारणाओं के ऐकांतिक वैशिष्ट्य को अंतस्थ करनी संभव नहीं है।[17] इस मूल्य प्रधान और उपदेशपरक अवधारणा के कारण इतिहास की परिधि अत्यंत व्यापक हो जाती है जिसकी स्पष्ट झलक अर्थशास्त्र में देखने को मिलती है जहाँ पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र को सामग्रिक रूप से इतिहास बताया गया है।[18] इस प्रकार जीवन मूल्यों अथवा संस्कृतिपरक मूल्यों का उपदेश (संप्रेषण) करने वाले सभी स्रोत 'ऐतिहासिक' हैं, भले ही तथ्यात्मक तौर पर परीक्षण करने पर वे 'अनैतिहासिक' (नॉन हिस्ट्रॉरिकल) प्रतीत होते हों। तथ्यों पर मूल्यों की इस प्रधानता के कारण ही इतिहास सनातन भी हो सकता है जैसा कि महाभारत में कई स्थानों पर 'एष इतिहास सनातनः' की उद्घोषणा से ज्ञात होता है। इतिहास की यह अवधारणा अपने रूप वैशिष्ट्य के आधार पर कहीं 'आर्ष शह' में स्वयं अभिव्यक्ति करती है जो कहीं प्रत्यक्ष को परिदृश्यमान करते हुये आगमिक अर्थों को स्पष्ट करने के लिये कर्मफल सम्बन्ध स्वभाव में रूप लाभ करती है।[19] इतिहास की भारतीय अवधारणा इस प्रकार भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों जैसे कर्म, पुनर्जन्म, भाग्यवाद, अवतारवाद, वैराग्य चेतना आदि की सामग्रिक व्याप्ति में अपनी काया का विस्तार प्राप्त करती है और इस तथ्य की पुष्टि का आधार प्रस्तुत करती कि इतिहास चेतना वस्तुतः संस्कृति चेतना का ही एक प्रतिरूप है और अंततोगत्वा सारा इतिहास मूल्यों का इतिहास ही होता है क्योंकि संस्कृति भी मूल्यों के समुच्चय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[20]

इतिहास की इस अवधारणा को दृष्टिगत करते हुए राजतरंगिणी के ऐतिहासिक मूल्यांकन का कोई भी प्रयास यद्यपि सापेक्ष होने के आरोप से नहीं बच सकता तथापि वही उसकी ऐतिहासिकता का वास्तविक आधार भी होगा क्योंकि पूर्व में संकेतित है कि इतिहास का मूल चरित्र संस्कृति–सापेक्ष ही हो सकता है। कहा जाता है कि किसी भी इतिहास कृति के अर्थ तब अधिक स्पष्ट होते हैं जब उसके लेखक के व्यक्तिव उसकी मानसिकता और उसके मंतव्य को अच्छी तरह जान लिया जाए।[21] इस दृष्टि से राजतरंगिणी के ऐतिहासिक अध्ययन

के विषय में कोई भी चर्चा प्रारंभ करने के पूर्व यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कल्हण का उद्देश्य कश्मीर के विषय में किसी इतिहास ग्रन्थ का प्रणयन करना नहीं था बल्कि उसने राजतरंगिणी की रचना काव्य के रूप में की थी।[22] उनका मानना था कि मनोहारी रचना का सृजन करने में प्रजापति से सादृश्य रखने वाले सुकवि के अतिरिक्त अन्य कौन मनुष्य के समक्ष अतीत को प्रकट कर सकता है।[23]

काव्यशास्त्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप अलंकारशास्त्र का यथावश्यकता निर्वाह और एक निश्चित रस शांत का चयन करके कल्हण ने राजतरंगिणी के 'काव्य' होने का प्रमाण भी प्रस्तुत कर दिया है।[24] तथापि अतीत को प्रकट करने का भाव राजतरंगिणी के काव्यत्व में इतिहासत्व को समाहित कर देता है।[25] इस बिन्दु पर यह अभिकथन अनुचित नहीं होगा कि ''न केवल भारतीय बल्कि क्लासिकी साहित्य परम्परा में भी इतिहास के विकास में काव्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इतिहास पिता हेरोडोटस को दूसरा होमर अकारण ही नहीं कहा गया है।[26] थ्यूसीडाइडिज तथा पॉलीबियस के काफी बाद रोम में इतिहास के अंतर्गत काव्य कला के प्रदर्शन तथा नैतिकता बोध जाग्रत करने के उद्देश्य से उपयोगी तथ्यों के संग्रहण पर बल दिया जाता था।[27] भारतीय संदर्भ में देखने पर हमें ज्ञात होता है कि ''प्रथम शताब्दी ई. से काव्य उस क्षेत्र में अतिक्रमण करता दिखाई पड़ता है जो पहले इतिहास का क्षेत्र माना जाता था।'' और ''इन ऐतिहासिक काव्यों में तथ्य संप्रेषण के स्थान पर अप्रत्यक्ष तथा लक्षणात्मक अभिकथन मिलते हैं जिनका मूल उद्देश्य सौंदर्यशाखीय प्रभाव उत्पन्न करना है'' तथा ''इस प्रकार गौण इतिहास–लेखन के साथ ही प्राथमिक इतिहास–लेखन विद्या में भी तथ्य पक्ष की उपेक्षा कला पक्ष की सर्वोपरिता प्रतिष्ठापित होने लगी।''[28] इस प्रकार के ऐतिहासिक लेखन के उदाहरण चरित ग्रंथ कहे जा सकते हैं जिनके कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी उनके इतिहास को काव्य पराभूत कर लेता है। किन्तु राजतरंगिणी के संदर्भ में यह स्थिति विपरीत रूप में लागू होती है। कल्हण द्वारा काव्य घोषित किए जाने और कतिपय काव्योचित लक्षणों से सम्पन्न होने के बावजूद राजतरंगिणी अपनी प्रत्यक्षता, स्पष्टकथनता, निष्पक्षता, साक्ष्यपरकता आदि गुणों के कारण काव्य के परंपरागत प्रकारों में अपना वैशिष्ट्य स्थापित कर देती है[29] और भारतीय इतिहास परम्परा के पूर्वोक्त लक्षणों को आत्मसात करती हुई अपने ऐतिहासिक व्यक्तित्व के विकास का पथ प्रशस्त करती है। ऐतिह्य के दोनों लक्षणों अर्थात् स्मृति का

प्रत्यक्षीकरण तथा परम्पराओं का उपदेश समवेत रूप में कल्हण के उस कथन में अपनी अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं जिसमें वह राजतरंगिणी की रचना भावी पीढ़ी के शिक्षण से की गयी बताता है।[30] ऐतिहासिक सत्य की प्रतिष्ठा के लिए काव्योचित अनिवार्यताओं का बलिदान कर देने की कल्हण की प्रवृत्ति राजतरंगिणी की ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रतिष्ठा का आधार प्रस्तुत करती है।

साक्ष्याधारित और तथ्यपरक विवरण प्रस्तुत करने की प्रवृति के बावजूद राजतरंगिणी में स्थान–स्थान पर पौराणिकता, भाग्यवाद, कर्मफलवाद, शकुन विचार आदि का समावेश दिखायी देता है जो घोषाल के अनुसार राजतरंगिणी के इतिहास रूप पर प्रश्नचिन्ह है।[31] किन्तु इतिहास की अवधारणा व्याप्ति को संदर्भित देखने पर राजतंरगिणी की उपर्युक्त समाविष्टियाँ उसके रूप की पुष्टि ही करती हैं और घोषाल के मत की समीचीनता हिस्ट्री के संदर्भ में ही सीमित रह जाती है।

भारतीय–इतिहास परंपरा में हर्षचरित और राजतरंगिणी को उनके विकसित ऐतिहासिक स्वरूप के कारण इतिवृत्त की श्रेणी में रखा गया है[32] और पूर्व में यह उल्लेख किया जा चुका है कि इतिवृत्त भारतीय इतिहास–लेखन का एक प्रकार माना जाता है जिसकी गणना अर्थशास्त्र में उल्लिखित इतिहास–लेखन के प्रकारों में पुराण के बाद की गई है। पाठक ने इस बात की ओर हमारा ध्यान दिलाया है कि कश्मीर में इतिहास लेखन की एक सशक्त परम्परा थी जिसके सूत्र उनके अनुसार वैदिक कालीन इतिहास–लेखन की 'भृग्वांगिरस' अथवा 'अथर्वांगिरस' परंपरा से जुड़े होने की सम्भावना है।[33] कल्हण का सम्बन्ध कश्मीर से एवं वंश परिचय में उनके भार्गव कुल की सारस्वत शाखा[34] से सम्बन्धित होने के तथ्य से इस बात की संभावना प्रबल हो जाती है कि वे न केवल इतिहास–लेखन की इस सशक्त परंपरा से परिचित रहे होंगे बल्कि इस परंपरा के पालन–अनुसरण में उन्होंने इतिहास–लेखन में रुचि विकसित की होगी और इसी के परिणामस्वरूप राजतरंगिणी का प्रणयन हुआ। जिसे काव्य घोषित करते हुए भी कल्हण ने इतिहास से अधिक दूर नहीं जाने दिया, बल्कि यह कहना शायद अधिक उचित होगा कि उन्होंने इतिहास को ही संभाला, काव्य की अधिक चिंता नहीं की।[35] इतिहास लेखन के विकास के लिए राजतरंगिणी ने कश्मीरी लेखकों के लिए प्रेरणास्त्रोत का भी काम किया क्योंकि हमें ज्ञात है कि कल्हण की राजतरंगिणी के बाद कम से कम तीन राजतरंगिणी का प्रणयन इसी परंपरा में हुआ जिसका श्रेय क्रमशः जोनराज, श्रीवर तथा संयुक्त रूप से

प्राज्यभट्ट तथा शुक को जाता है और कल्हण कृत राजतरंगिणी के पारम्परिक नैरंतर्य का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करता है।

राजतरंगिणी इस प्रकार प्रथमतः काव्य रूप होते हुए भी अपनी सम्पूर्णता में भारतीय इतिहास–परंपरा से अपना अभिन्न सम्बन्ध स्थापित करती है। अपनी काव्यशास्त्रीय अनिवार्यताओं को इतिहास की आवश्यकतानुसार बलिदान करते हुए भारतीय इतिहास की परंपरागत विशेषताओं को इस तरह आत्मसात कर लेती है कि इतिहास स्रोत के रूप में उसके मूल्यांकन के सारे विकल्प अशेष हो जाते हैं और राजतरंगिणी न केवल हिस्ट्रॉरिकल बल्कि ऐतिहासिक कृति के रूप में भी अपनी प्रतिष्ठा निर्विवादतः प्राप्त करती है।

सन्दर्भ सूची

बाशम, ए. एल, द कश्मीर क्रोनिकिल, हिस्टोरियंस ऑव इंडिया, पाकिस्तान ऐड सीलोन, (सं.) फिलिप्स, सी. एच, ऑक्सफोर्ड, 1961, पृ. 57 तथा आगे, देखिए घोषाल, यू. एन. लैंडमार्कस इन एंशियंट हिस्टोरियोग्राफी, स्टडीज इन द कल्चरल हिस्ट्री ऑव इंडिया, (सं.) मेटरॉक्स, एस. जी. तथा क्रूजे. एफ. आगरा 1965, पृ. 279

कालिंगवुड, आर. जी. आइडिया ऑव हिस्ट्री (पुनर्मुद्रित) ऑक्सफोर्ड, 1973, पृ. 20–24 विस्तार के लिए देखिए, सिन्हा, ए. के. इंडियन कांसेप्ट ऑव टाइम ऐंड हिस्टॉरिकल कांशसनेस इन एंशिएंट इंडिया, वर्ल्ड आर्क्यलॉजिकल कांग्रेस– 3, नई दिल्ली, 1994 में प्रस्तुत शोधपत्र। थीम पेपर 'कांसेप्ट ऑव टाइम' में प्रकाशित. वही. इस लेख में एम. ए. स्टीन द्वारा संपादित तथा अंग्रेजी में अनूदित राजतरंगिणी (पुनर्मुद्रित), दिल्ली, 1979 का उपयोग किया गया है।

राजतरंगिणी, 1, 14, 1.8–20; 1.15

मजूमदार, ए, के; संस्कृत हिस्टॉरिकल लिटरेचर ऐड हिस्टोरियंस, मेटरॉक्स. एस. जी. तथा एप क्रूजे, (सं0) स्टडीज इन द कल्चरल हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ. 221.

तुलनीय, वार्डर, ए. के. ऐन इंट्रोडक्शन टु इंडियन हिस्टोरियोग्राफी (हि. अनु.) चंडीगढ़ 1987, पृ. 57–59

मजूमदार, ए. के. पूर्वोद्धृत।इतिहस्य भावः ऐतिह्य के अनुसार इतिह भाव से ऐतिह्य होता है। शब्दकल्पद्रुम में दोनों को समानार्थी बताया गया है तथा उनका अर्थ पारंपर्योपदेश कहा गया

है। शब्दकल्पद्रुम, प्रथम भाग, 7 (सं.) राजा राधाकांत देव, वाराणसी, 1967, पृ. 205

ए. के.; पूर्वोद्धृत।

कार, ई. एच.; हवाट इज हिस्ट्री (हिं. अनु.) दिल्ली, 1976, पृ. 27

द्रष्टव्य, सिन्हा, ए. के.; भारतीय संस्कृति का इतिहास बोध : इतिहास संरचना, (सं.) विद्याधर मिश्र, वाराणसी, 1998.

धर्मार्थ–काम मोक्षानामुपदेश–समन्वित ।

पूर्ववृत्तं–कथायुक्तं इतिहास प्रचक्षते ।।

विस्तार के लिए देखिए सिन्हा, ए के. थ्यूसीडाइडिज ऐंड कल्हण : ए हिस्टोरियोग्राफिकल स्टुडी यूसीडाइडिज पर एथेंस, यूनान में सितम्बर 1997 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र।

पुराणमितवृत्तमाख्यायिकोदाहरणमर्थशास्त्रं–धर्मशास्त्र चेतीतिहासः अर्थशास्त्र, (सं.) आर. पी. कांगले जिल्द 1 , बंबई 1996, 1.5.14

प्रत्यक्ष परिदृश्यमाना आगमिकार्थाः कर्मफल–संबंधस्वभावाः यत्रासते तेनेतिहासेनः अभिनव, नाट्यशास्त्र जिल्द 1. पृ. 53–54; पाण्डे, गोविन्द चन्द्र; ऐन एप्रोच टु इंडियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन, वाराणसी, 1985, पृ. 131, पर उद्धृत।

पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, मीनिंग एण्ड प्रोसेस ऑफ कल्चर, आगरा, 1972, पृ. 3–5

कार, ई. एच. पूर्वोद्धृत, पृ. 19.

ए. के पूर्वोद्धृत, पृ. 56–57, घोषाल, यू एन., पूर्वोद्धृत, पृ. 279

राजतरंगिणी, 1.35

राजतरंगिणी, 1.23, वार्डर, ए. के पूर्वोद्धृत, पृ. 57

घोषाल, यू एन. पूर्वोद्धृत, पृ. 279.

स्टीन,एम. ए. पूर्वोद्धृत, पृ. 22.

पाण्डे, गोविन्द चन्द्र (सं.) इतिहास : स्वरूप और सिद्धान्त, जयपुर, 1973, पृ. 76

घोषाल ने राजतरंगिणी के इन गुणों का विस्तार से वर्णन किया है। देखिए, घोषाल, यू एन. पूर्वोद्धृत, पृ. 279.

स्टीन,एम. ए., पूर्वोद्धृत पृ. 21: वार्डर, पूर्वोद्धृत, पृ0 57

पाण्डे, गोविन्द चन्द्र (सं.) पूर्वोद्धृत, पृ. 64